पीपल छाँव

एक वृक्ष, एक कहानी, अनेक भावनाएं

संतोष कुमार

BlueRose ONE .com
Stories Matter
New Delhi • London

BLUEROSE PUBLISHERS
India | U.K.

Copyright © Santosh Kumar 2025

All rights reserved by author. No part of this publication may be reproduced, stored in a retrieval system or transmitted in any form or by any means, electronic, mechanical, photocopying, recording or otherwise, without the prior permission of the author. Although every precaution has been taken to verify the accuracy of the information contained herein, the publisher assumes no responsibility for any errors or omissions. No liability is assumed for damages that may result from the use of information contained within.

BlueRose Publishers takes no responsibility for any damages, losses, or liabilities that may arise from the use or misuse of the information, products, or services provided in this publication.

BlueRose ONE.com
Stories Matter
NewDelhi • London

For permissions requests or inquiries regarding this publication, please contact:

BLUEROSE PUBLISHERS
www.BlueRoseONE.com
info@bluerosepublishers.com
+91 8882 898 898
+4407342408967

ISBN: 978-93-7310-712-7

Cover design: Shubham Verma
Typesetting: Sagar

First Edition: October 2025

अनुक्रमणिका

1- रंगमंच का गिरगिट 1
2- होरी अमर है 2
3- सुन्दरता 3
4- विमर्श 4
5- राजा 5
6- मैं उनकी इज्जत करता हूँ 6
7- सिलण्डर पर चूल्हा 7
8- पीपल 9
9- सरकार किसकी है ? 11
10- विभाजन विभीषिका.. 13
11- मेरी जान के दुश्मन.. 15
12- माँ चिड़िया 18
13- दुश्मन 20
14- बच्चे खेलना चाहते हैं 22
15- दोपहर 23
16- अहसास 25
17- आ जाऊँ, देश तुम्हारे.. 27
18- पैसेन्जर ट्रेन 30
19- ब्रेकिंग न्यूज 32
20- गाँव के कुत्ते 34
21- युग बदल गया है 35
22- सूअर 37
24- घिस सा गया हूँ 38
25- किल्ली 39
26- अज्ञात भय के दानव 41
27- सत्य भीड़ है 44

28- देशद्रोही 45
29- शिशु 46
30- धरती बेरंग 47
31- स्वर्ण तन्तु 48
32- विचार 51
33- मैं ऐसा तो नहीं था 54
34- सडांध 59
35- अदृश्य दीवार 61
36- कबाड़ 64
37- पूँछ 66
38- सफर 67
39- फफूंद 68
40- धन्यवाद 71
41- खाली हाथ 73
42- स्कूल में प्रवेश 75
43- जल गये ख्वाब सब 84
44- सुखी जीवन की सम्भावना.. 85
45- लाश 86
46- पत्थर 87
47- साहित्य 88
48- तलवार की धार.. 89
49- स्वयं को मृत पाओगे 90
50- मैं जाना चाहता हूँ 92

1- रंगमंच का गिरगिट

न पा सका पुरस्कार
जिंदगी से, फिर भी,
वह किसी से कम तो नहीं,
है, “अभिताभ” सन्देह नहीं ।
जिंदगी के रंगमंच का गिरगिट है वो
बदलता है रंग,
जरूरत के संग,
गिड़गिड़ाता है,
रोता है, और,
हँसता है ।
जुबान से,
पेट से और,
आँख से ।
हँस रो सकता है
वह साथ-साथ
शाम को बन जाता वह
प्यारा पापा
स्वप्न दिखाता नित्य नये
कल कुछ लाने का
करता वायदा रोज नये
इन्तजार में खड़ी-
काली अंखियों से
कम्पित धुंधलाये बूढ़े सपनों से
घर जल्दी लौट आने का ।

2- होरी अमर है

होरी !
तुम, तुम्हारी समस्या
कालजयी हैं ।
तुम अमर हो ।
कभी नहीं मरते, न तुम
न तुम्हारी समस्या ।
घाव भी, भरे नहीं तुम्हारे अभी
दे दिए जख्म और कुदरत ने
सूख गये है खेत,
डूब गये हैं खेत,
ओला से टूट गये खेत,
कट कर पहुँची फसल बाजार
दाम इतना मिला कि
कौड़ियों में बिक गये हैं खेत ।

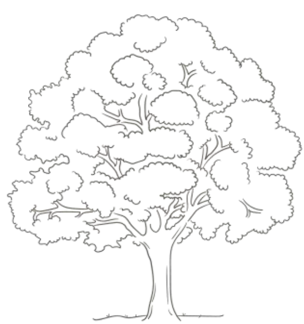

3- सुन्दरता

तुम बला की खूबसूरत
मुस्कराती हो तो बहार आती है
आने से तुम्हारे
महक जाते हैं चमन के फूल सब ।
तुम्हारी शोख अदाये,
बन जाती है जीने का सहारा ।
पर, उस दिन जब
कोई रो रहा आत्मा से,
तब तुम रोई नहीं थीं ।
तुम्हारी आंखों में नहीं था
दर्द-आँसू
और वो छोटा बच्चा भूख प्यास से
बेसुध पड़ा भूमि पर तब
नहीं जागी दया-करुणा तुम्हारे हृदय में,
तुमने दौड़कर उसे उठाया नहीं
और, गले लगाया नहीं
अब मुझे तुम,
सुन्दर नहीं लगती,
दिखती हो चमकीले पत्थरों का,
ढेर मात्र, सख्त सूखा ।

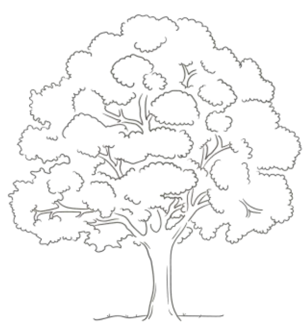

4- विमर्श

मुझे मालूम है,
अन्याय हो रहा है,
सब हदें पार हो गईं,
और मानवता तार-तार ।
स्त्रियों को रौंद डाला
खींच लिये आत्मा से प्राण
छीन लिया मुँह से निवाला
पर मैं खामोश रहा ।
न हुआ मन बेचैन मेरा
सुबह गर्म चाय के साथ
खोलकर अखबार नित्य
नई ताज़ा खबरें पढ़ना मुझे
अच्छा लगता है ।
मैं अपडेट रहता हूँ,
और कर पाता हूँ चिंता,
पार्क में, ऑफिस या कहीं भी,
कर पाता हूँ विमर्श,
देश हित में ।

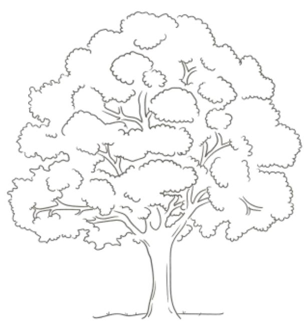

5- राजा

खेत की पतली मेंढ़ पर,
लादे, सिर पर आग का गोला,
ठोकर और संभलते-संभलते
काले, भुने, फटे, नंगे पांव
तेज-तेज चला जा रहा ।
बदन पर चिपटी, गर्मी,
बहता पसीना, सिर से पैर तक
चुंधिया गई हैं आँखें,
सामने सूरज की लपटें ।
और अचानक आया-
हवा का ठण्डा झोंका
उतर, दूर बादल से कहीं,
सहला दिया बदन को,
ठण्डे ठण्डे हाथों से ।
और हुआ अहसास
"राजा हूँ मैं"
फैला दी भुजायें आसमान में
देश के किसान ने ।

6- मैं उनकी इज्जत करता हूँ

सड़क किनारे फुटपाथों पर,
कुछ सौ रूपये का
श्रम या सामान
लिये बैठे हैं जो
धूप, बारिश छाँव में
सिर पर लादे हुए जिम्मेदारियां ।
देखते, आते-आते लोगों को ।
और बढ़ जाता जब कोई,
नजदीक बहुत तब,
खिल जाती हैं, आँखें उनकी ।
घण्टों-घण्टों और दिनभर भी
बैठे रहते आशा और उम्मीदों का
आसमान ओढ़े वो
मैं उनकी इज्जत करता हूँ ।

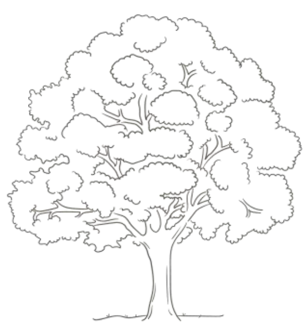

7- सिलण्डर पर चूल्हा

महानगर/शहर
भीड़-भाड़, बहुमंजिली झिलमिलाती इमारतें
ट्रैफिक, जाम-चलती गाड़ी, रेंगते लोग
और यहीं कहीं किसी गली में
दस वाई दस वाई दस का कमरा
दूसरी मंजिल पर, संकीर्ण सीढ़ी
कतार में और भी कई छुटके मकान ।
कमरे में, गेट के सामने, कोने में
रखा मेज पर बक्सा,
बक्से पर फिर बक्सा
बक्से पर रखा है टीवी ।
टीवी पर गुड़िया, रखा साथ में गुच्छा चाबी का
और बीच में 'बाबू जी' माला पहने
हँसते-हँसते दे रहे मूंछों पर ताव ।
और मेज के नीचे
रखा छोटा बक्सा, जिस पर
रखा मोनू का बस्ता, जिसके
साइड में टिका, क्रिकेट का बल्ला ।
गेट के पीछे हैंगर
लदा कपड़ों से इतना
खुलता गेट आधा ।
और वहीं रखा कोने में
सिलण्डर के ऊपर चूल्हा
जो उतरता सुबह-शाम
टंगी सामने घड़ी
घड़ी में बजा अभी बारह का घण्टा

चांद निकला, कुत्ते भौंके
सभी व्यवस्थित- पर
अभी नहीं लौटा आफिस से
बच्चों के प्यारे पापा ।

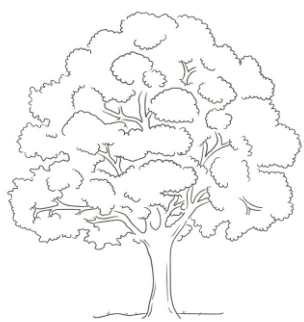

8- पीपल

गाँव में,
खेत में,
खड़ा वो दरख्त पुराना
पीपल का पेड़ ।
जबसे मैंने होश संभाला
तबसे उसके साथ रहा
अनगिनत यादें तैर रही आज भी
तैरते पीपल के पत्ते जैसे ।
जब गांव में था, खेलता
तब छाँव तले रोज,
आ गया जब शहर, मैं
वह भी मेरे साथ आया
और बैठ गया हृदय में,
लहराता रहा सदैव ।
जब भी गांव की याद आई
स्वयं को पीपल की छांव में पाया,
पीपल के गिरते पत्तों को
नीचे, जुते खेत के मोटे डेलों पर,
बैठकर, घण्टों तक देखा करता था ।
कैसे लहर-लहर नीचे गिरते और
तेज हवा के झोंके में उड़ जाते हैं ।
हवा के सूक्ष्म प्रवाह में भी
पीपल, ताली पीट हँस देता है ।
खेतों में-
बारिश, जब-जब लेती पकड़
तेज दौड़ गिरते-पड़ते सब

शरण में उसके छिप जाते ।
उस सुबह घेर लिया बारिश ने
और मैं बैठ गया,
मोटे तने की खोखल में,
पर 'काले चींटे' बौराने से
भाग रहे इधर-उधर
काट न ले पैरो में
बचने को खड़ा रहा, एक पैर पर
चौकन्ना बहुत देर तक, मैं ।

वर्षों बीते गांवो छोड़े
धूमिल सब स्मृति
पर पीपल का पेड़ वह
हृदय में लहराता
झुक-झुक, हिल-हिल डालें मानों
पीपल, गांव बुलाता है ।

और आज गांव में उस
पीपल को काट दिया है ।
क्यों, कब, कैसे ?
उठे सैकड़ों प्रश्न
हुआ दुःख, अहसास कि
वह छत उजड़ गई जहाँ
पहाड़ जैसे दुःख निराशा में
पा आश्रय उस खोखल में
सो जाता खो जाता मधुर स्मृतियों में
जो लहरा उठती अन्तर्मन में
पर आज हृदय में निराशा ही निराशा
जैसे मरुस्थल में केवल 'गर्म रेत' ।

9- सरकार किसकी है ?

बस्ती में बुलडोजर ही नहीं आया,
सत्ता की हनक भी आई
और साथ लाई-
“पचास पुलिस के लठैत,
कुछ राइफल पुरानी”,
सफेद गाड़ी में बैठे कर्तव्यनिष्ठ नौकरशाह
फाइलों में तल्लीन मुआयना करते हुए ।
और माइक में चल रही थी बारम्बरा चेतावनी
“कानून अपने हाथ में न ले कोई
शांति बनाये रखें
घर खाली कर दें
यह सरकारी जमीन है”

गरमी की चिलचिलाती धूप में
अधनंगे बच्चे सुबकते-रोते रहे सड़क पर
और माँ चिल्लाती रही, रोती रही
“मत तोड़ो मेरा घर
बच्चों को लेकर मैं कहाँ जाऊँगी ?
मेरे बच्चे बेघर हो जायेंगे”
पर सब बहरे गूँगे
किसी ने न सुनी-
विनती, निवेदन, रोना, गिडगिड़ाना ।
और रेत जैसे बिखेर दिये सब
कच्चे-पक्के, टीन-टप्पड़, सब झौंपड़ा
कर दिये जमींदोश

धूल का बवंडर छठ रहा अब धीरे-धीरे
माईक में आई चेतावनी फिर-
'कानून हाथ में न ले'
'शांति बनाये रखें'
'जमीन खाली कर दें'
'यह सरकारी जमीन है ।'
अब, बच्चे रो नहीं रहे,
माँ सुबक रही है धीरे-धीरे, और
सहला रही है सिर बच्चों का
वहीं कहीं बैठे जमीन पर
हुआ मिशन सक्सेस
अब लौट रहा लावो लश्कर
शाम ढल रही, अब
सरकार किसकी है ?
अंधेरे में दिख नहीं रहा ।

10- विभाजन विभीषिका

आदेश- सरकारी
विभाजन विभीषिका यात्रा गतिमान
उमसिया शाम, गर्मी बहुत
जिलाधिकारी आगे, पीछे-
विभाजन विभीषिका बैनर अन्य
अधिकारी भी साथ-साथ
इनके पीछे सरकारी स्कूल के आज्ञाकारी छात्र
जो आ गये थे, शिक्षकों के बुलाने पर
पैदल, कई किलोमीटर साइकिल चलाकर
पसीने में तरबतर,
मौन धारण किये हुए, गुरुजनों के साथ
हाथ में तिरंगा लिये-
पसीने में लथपथ, बाजार से गुजरते हुए
लोग सड़क किनारे खड़े, कुछ हँस रहे थे,
कुछ जिज्ञासामय देख रहे थे
सबको मौन जाते हुए ।
इसी यात्रा में 'वह दिव्यांग छात्र'
कमर पर लटकी पैंट ऊँची
शर्ट छोटी, टूट गये कुछ बटन भी
चल रहा मौन
तेज-तेज डेढ़ चाल लपकता सा
मौन, हाथ में तिरंगा, अपनी धुन में ।
दूरी ज्यादा और गरमी भी
हो गई हालत सिकस्त
मुँह पर जमा हो गई पसीने की बूंदें

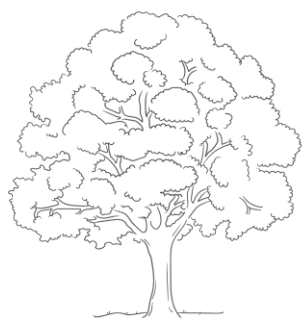

अब यात्रा पहुँच गई गंतव्य स्थान पर
हो चली थी शाम अब
जलने लगीं लाइट शहर की
डी.एम. साहब देख रहे हैं, अब
विभाजन विभीषिका गैलरी की
चित्रशाला, बंगाल विभाजन, असहयोग
भारत छोड़ो, भारत विभाजन के चित्र
साथ में अन्य अधिकारी भी ।
बाद इसके अधिकारियों ने किया
रिफ्रैशमैंट, सूक्ष्म जलपान ।
फिर चर्चा परिचर्चा, सलाह चेतावनी
के बाद बैठ सफेद गाड़ी में
चले गये सब अधिकारी
सम्पन्न हो गई विभाजन विभीषिका यात्रा
और रह गई कुछ भीड़ ही
सरकारी स्कूल के बच्चे और शिक्षक
गरमी, प्यास से बेहाल
पी रहा पानी नल से अकेले
वह “दिव्यांग छात्र” ।

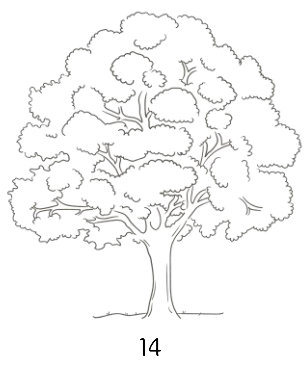

11- मेरी जान के दुश्मन

न जाने, क्यों ?
मेरी जान के दुश्मन
मेरी छाती पर सवार
तुम, मुझे मार देना चाहते हो ।
मेरी हरसंभव कोशिश,
बचने की तुमसे ।
पर, मेरी गर्दन पर,
रख दिया है तुमने
“तेज धार चाकू” और
मैं अहसहाय, बच नहीं पा रहा
दबा हाथों को घुटने से,
बैठकर छाती पर,
हिलने तक नहीं दे रहे
और तोड़ दिया जबड़ा मेरा
दबा दी गर्दन
निकल आये आँखों के गुल्ले
खून में डूबे हुए ।

देख रहा हूँ / तुम्हारी लाल आँखों को
नहीं देखा तुमने-
मेरी लाचारी, दर्द, आंसू / सब व्यर्थ
मैं असहाय
और तुमने फेर दिया चाकू गले पर
घोंप दिया आधा गले में
घौं-घौं-घौं
चिल्ला नहीं पा रहा, बस छटपटाहट

सच में, तुमको ईश्वर ने बहुत ताकत दी है
मैं, बहुत कमजोर, असहाय, चिंता में
क्या होगा मेरे बाद -
मेरे बच्चों का और
आज जब न लौटूंगा घर
रोयेगा आंगन मेरा,
रोते-रोते ढूंढेगी मेरी बिटिया
इधर-उधर, यहाँ-वहाँ
पर कहीं नहीं पायेगी ।
न होने का अहसास
दिल डुबा रहा है ।
तुमको ईश्वर ने बहुत ताकत दी,
मैं कमजोर
मेरी सब कोशिश व्यर्थ ।
जीना चाहता हूँ- मैं,
और तुमने घोंप दिया,
पूरा चाकू, पूरी ताकत से,
काट दी मेरी गर्दन,
मैं अंत तक तुमको/देखता रहा
दया, याचना, करुणा करता रहा
तुमसे, ईश्वर से, किन्तु
दूर तक आसमान में, चारों तरफ
सन्नाटा, सब खामोश
जीवन भर की आस्था, विश्वास का क्या ?
सब धुँआ-धुँआ ।
कोई नहीं सिवाय तुम्हारे ।

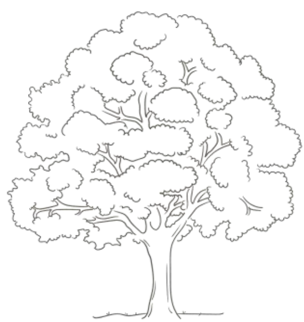

चीं-चीं की आवाज ।
चहकती उस चिड़िया की
स्मरण शून्य, बस मेरी गुड़िया
डूब रहा शून्य में
धीरे-धीरे
न जाने क्यों ?
मेरी जान के दुश्मन तुम ।

12- माँ चिड़िया

मैं !
देशभक्त नहीं
मेरा कोई देश नहीं,
यह -
गले में कच्चे चमड़े का पट्टा
सडाँध से नथुने भरे रहते हैं ।
नव शीतल हवा अवरूद्ध,
बजबजाता कीचड़ मन में,
गर्दन मोटी कि
पट्टा उतरता नहीं, और
मैं !
मरिअल, नहीं फड़कती बाजुयें
नहीं होते खड़े रोंगटे, सुनकर किस्से
वीरता के और
अतीत के यशोगान पर
मेरे,
ह्रदय में श्वेत पुष्पों का समुंदर
खिल रहे ज्यों मुस्कराते मासूम चेहरे
भरा लबालव प्यार, स्नेह ज्यों
टपकती चांदनी, ओस-मोती
सुन पाता हूँ, वेदना ।
भय आकुल कुमुलाये चेहरे
सूखी आँखें मानव की ।
'तड़कते' बारूद गोले आकाश में
'धपाक' से गिरे मासूम अण्डे
"माँ-चिड़िया" का दर्द सुन पाता हूं ।

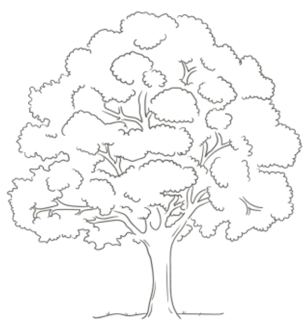

और आग जंगल में, उठा धुंआ
जुगनू जैसे चमकीं, जलती तितलियां ।
राख में तैरती पंखविहीन चिड़ियां
तालाबों में उबल रही मछलियां,
हाँफ रही, हो तप्त जमीनी दुनियाँ
झुलस गये, नवकोपल श्वेत पुष्प भी
ओस भाप बन उड़ गई
धुंआ उठा व्योम में, सूरज चांद बन गया
चमकने लगे तारे दिन में और
वहीं कहीं खड़ा मैं भी
रो पाता हूँ ।
मेरा कोई देश नहीं
पट्टा उतरता नहीं, पर
उतारना चाहता हूँ ।

13- दुश्मन

जब, तुम लेकर
तोप टैंक लावो लश्कर
निकले रात अंधियारे में
खामोशी से, हवा सरकती जैसे
धीरे-धीरे, धीरे-धीरे, किसी गली से
रौंदने, उस बस्ती को ।
देखा तुमने,
असमानी आंगन में,
तारे सूख रहे थे, जो
टिलमिल झिलमिल चमक रहे थे ।
अनंत शून्य तक महक रहे थे,
और भर गई नदी तारों से,
बरस रहे जो आसमान से !
उसी दूधिया रात में
कोई पक्षी, अपने बच्चों से मिलने व्याकुल
उड़ा जा रहा था
शान्त खामोशी से

और देखा तुमने उस चूहे को
जागा जो पग आहट से
वह डर कर भागा अपने घर से
और उसी क्षण, शिकारी ने दबच लिया
जैसे तुमने चुपके से, थी
बस्ती में आग लगाई ।
जल उठे धू-धू कर
वो छप्पर वाले घर जिनसे

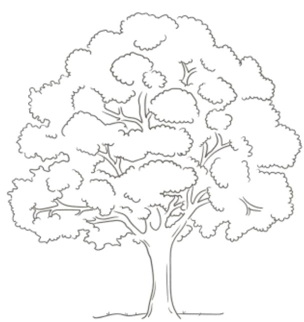

उठा, चीत्कारो का बवंडर
सहम उठे टिलमिल तारे
डर गई वह दूधिया नदी
हो गई थी लाल ।
जल गये सब, वह
नव प्रसूता, बच्चे, बूढ़े
और शेष रहे प्रश्न
क्या तुमने खत्म कर दिया
अपने दुश्मन को आज,
इस दूधिया चांदनी में ।

14- बच्चे खेलना चाहते हैं

लाओ ! कुदाल, कुल्हाड़ी
काट-छील, झाड़-झंकाड़ नुकीले पेड़
भर ले गड्ढे, व्यर्थ कचरे से
उठ रही सडाँध जिससे
भर दें, गहरी-गहरी खाइयों को,
उस रेत से जो दबी
मन हाथों में ।
बना दें, समतल इस धरती को
और बीन लें बिखरे कंकड़-कंकड़ को
कहीं न चुभ जाये पैरों में कि
आज, बच्चे खेलना चाहते हैं ।
दबा दे, तलवार औ बंदूकों को
धरती के गर्भ स्थल में,
उगेंगे नव पौधे कोमल-कोमल
तितली उड़ेगी रंग-बिरंगी,
फुदकेंगी, चहकेंगी चिड़िया डाल-डाल पर,
महकेगी खुशबू आसमान तक,
उतरेंगे बादल भू पर,
और प्रेम से पिघल पड़ेंगे,
एक मासूम कली कोमल स्पर्श
फूल खिल जाने दो कि,
आज, बच्चे उनको चूमना चाहते हैं ।

15- दोपहर

खुले खेत खलिहान
चिलचिलाती धूप और तेज हवा धूल भी
प्यास से मुँह खोलती और देखती -
दरारी/चटकन भूमि आसमान में ।
भूरे-भूरे बादल
उड़ती चीलें और गिद्ध
नीचे भेड़ बकरियों की मैं-मैं – मिमिआहट
साथ में, मुंडासे में लिपटा मूंछों वाला सिर
कंधे पर लठिया, हाथ फैलाये कोई शहंशाह हो जैसे

वह एक अकेला नन्हा पौधा
पत्ती दो-चार
सिर पर फूल मुकुट जैसा
हवा में लहराता है ।
सूरज की तेज तपिश में
छोटे-छोटे कीट मकोड़े छिप गये
गहरी चटकन में ।
अनेक चींटिया नन्हे पेड़ के नीचे
करने लगी विश्राम, चिपट गईं तने से
था, शीतलता लिए हरा भरा ।
और तभी किसान ने
खोला कुलावा नहर से
सूखे खुले खेत खलिहान में ।
नाली से सरकते हुए,
उतर आया खेत में जल प्रवाह,
दरारें उड़ेल देती पानी, मुँह में भरकर-

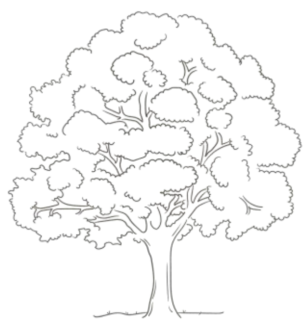

आगे की तरफ, साथ में कूड़ा करकट ।
उछलते झींगुर, मंजीरे कीड़ों को
लपकने को तैयार वगुला भगत ।

घेर लिया पानी ने नन्हे पौधे को
तने से चिपटी चींटी चढ़ गई ऊपर
होती देर तो बह जाती, बैठ गई वह
मुकुट जैसे फूल पर ।
जल प्रवाह के साथ आई हवा
ठण्डी-ठण्डी और सौंधी-सौंधी
हुआ हवा का शीतल स्पर्श
डुबो दिये पैर बहते पानी में
निकाल कर जूतों से,
उबल से गये थे, चिलचिलाती धूप में
उस चरवाहे ने ।

16- अहसास

मई माह की,
दोपहर धूप में ।
सड़क किनारे अमलताश के पेड़,
खड़े लदे फूलों से पीले-पीले
चारों दिशा, वना आवरण पीला-पीला
उड़ रहा गुलाल होली पर ज्यों
और सड़क पर बहती गाड़ियां
पीं-पीं..... पौं-पौं.... भौं....
थक गया गाड़ी का ए.सी.
सीसे से घुस आई गर्म धूप
जबरन लड़ने को ।
सूरज भी देख रहा गाड़ी के सीसे से
माथे पर तपिश आंखों में चुंदिआहट ने
किया मजबूर देखूँ सूरज की तरफ
सिवाय सामने के ही ।
और दिखे वो पीले फूल
झूलती डालों से बहुत दूर तक ।
हुआ आवरण पीला मानो
हंस रही हो प्रकृति चारों तरफ
और हुआ अहसास कि
हल्का हो रहा हूँ जैसे हवा
मन, आत्मा तपस्वी की
साधना में लीन जो ।
मन से बह निकला है-
'कोई भारी पदार्थ'
दबा रखा जिसने, न जाने कब से ?

व्यर्थ के बोझ तले,
अब बादल के ज्यों उड़ने लगा हूँ,
शून्य में ।
पर कुछ क्षण ही तो जी पाया
और पौं-पौं भौं-भौं की आवाज
ने ध्यान तोड़ा, अब
सामने देखता मैं
पर कुछ क्षण का अहसास
हृदय को करता प्रफुल्लित
लगा जिंदगी को जिया अभी
फूल ओस मोती पिया अभी
अपने मन-आत्मा से ।

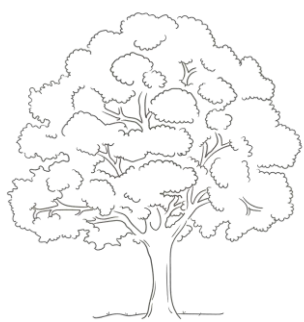

17- आ जाऊँ, देश तुम्हारे

आ जाऊँ ।
देश तुम्हारे,
और चूम लूँ
इस माटी को ।
मरु, हिम पर्वत, झील नदी
औ' मैदानों में बिखरे पुष्पों पर
मंडराती उस सतरंगी तितली को
छू लेना चाहता हूँ ।

मत रोको मुझे और,
हटा दो, बंदूकों की बाड़,
मैं, कोई दुश्मन नहीं,
आ जाना चाहता, बस,
जैसे- हवा, चुपके से । और,
चटक धूप में दूर क्षितिज तक,
फैली, नव यौवन, फसलों को,
जीवन की हर अनुभूति को
करना चाहता स्पर्श ।

एक फूल जो मुस्काता है
निर्मम चट्टानों के सिर पर और
उसी निर्जन चट्टान कोख से
रिसते मृदु नीर प्रवाह को
चख लेना चाहता हूँ
मैं देश तुम्हारे आना चाहता हूँ ।
उड़ते, गाते, करते कलोल

कितने पक्षी परिन्दे
ताल तलैया झरनों
औ बाग-बगीचे भोर-शाम में
उड़ते अलसाये बादल-
उतर धरा करते विश्राम
बारिश का स्पर्श, उठी सौंधी खुशबू
को अंतर्मन में भर लेना चाहता हूँ ।
मैं देश तुम्हारे आना चाहता हूँ ।

न जाने कब ?
किसने ?
क्यों ?
खींची काली रेखायें
औ' उस पार बनाये
बंदूक, तोप, गोले, बम परमाणु
बनायी विध्वंशक उल्कायें
मुझे मारने को ही तो
यदि आ जाऊँ देश तुम्हारे
क्या मुझे तुम मार ही दोगे ?

फिर जीवन का क्या ?
कब तक ? जब तक
और तब तक जीने साथ तुम्हारे
आ जाऊँ साथ तुम्हारे । तुम
पहचान तो लोगे । या
तिरस्कार ही दोगे ।

खाली हाथ हूँ, आम आदमी,
बस दो पल मेरे पास,
हर पल घुल जाना चाहूँ,

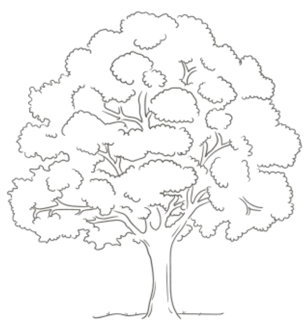

निर्बाध खुशबू मकरन्द ।
इच्छा भी अनंत नहीं बस
विध्वंस की गिरती उन
असमानी उल्काओं से
हो गई खुशियां जमींदोश
और शेष रहे
रूदन – आँसू,
धुंध- धुंआ, ज्वाला लपटें,
और तलाशती सूनी आँखें-
अपनों को, बिखरे सपनों को
बस आंखों में खुशियां भरने को
गले में उनसे मिलने को
आ जाऊँ
देश तुम्हारे
तो तुम मुझे .... ?

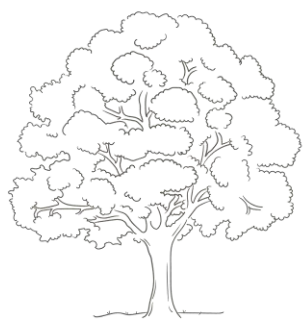

18- पैसेन्जर ट्रेन

सर्दी में कोहरे वाली शाम
पैसेन्जर ट्रेन का डिब्बा
लपेटे चादर मोटी, खादी, गन्दी
मरिअल, करकल्ली बुजुर्ग दाढ़ी वाला
दबाये झोला जिसमें चना तराजू
बैठा नीचे फर्श पर, गेट के पास
ट्रेन हिलती- डुलती, तेज चाल
बार-बार संभलता और
बीच इसी अवधि में घुस जाती
सर्द हवा, खद्दर की चादर में, तब
और सिकुड़ता जाता वह
और संभलता जाता है ।

हर स्टेशन गाड़ी रुकती
यात्री आते और उतरते,
भीड़ अधिक पैरों में टकरा जाता वह,
तब समेट झोला और स्वयं को
खींच लेता घुटनों के पास हर बार ।
टाइम रात्रि दस बजे, कुड़कुड़ाती ठण्ड
उसने मैले कुर्ते की जेब से
निकाले कुछ नोट गुड़ी-मुड़ी जो
एक-एक कर सीधा, लगा ली तह ।
फिर निकाले कुछ सिक्के खकोरकर
सब जेबों से, झोले से ।
आश्वस्त, अब नहीं कुछ जेब में,
उसने दोनों हाथों से गिना धीरे-धीरे

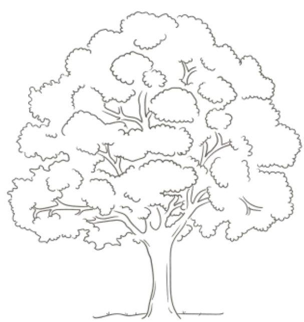

अंगूठा फिसल रहा नोटों पर
सहला रहा हर नोट को जैसे
माँ बच्चे के सिर को ।
और गिरा एक सिक्का हाथों से
लुढ़क आया कदमों के पास
मैंने उठाकर – 'लो बाबा अपने पैसे'
रख दिया हाथ पर, हो चुकी थी
गणना पूरी- पिच्च्यासी, छियासी कुल छियासी
भींच लिया मुट्ठी में, कसकर नोटों को
खींच लिया झोले को उसने और पास
साढे दस बजे स्टेशन आया
ट्रेन का गेट खुला 'धड़ाम' से
लुढ़क आये मोटे-मोटे सामान के थैले
गेट पर हो गई भीड़ ज्यादा
और किसी ने झुंझलाते हुए कहा
"अरे बाबा तुम कहाँ चले आये
या ठण्ड में मरने कूँ ।"
सुनकर बाबा ने-
पैरों को खींच लिया
मिल गये घुटने छाती से
खींच लिया झोला भी
टिका दिया माथा घुटनों पर
और ट्रेन दौड़ रही थी .... ।

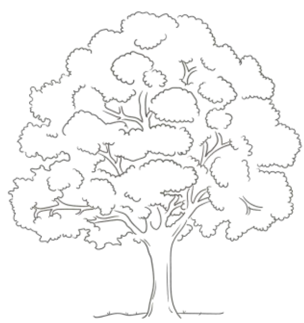

19- ब्रेकिंग न्यूज

कल से
टी0वी0 पर चल रही
एक बड़ी खबर
एक ब्रेकिंग न्यूज
शहर में एक बम फूटा,
पता नहीं कौन रूठा ?
लाशों का ढेर / लोथड़े, छीछड़े चारों तरफ
हा-हा कार .... चीत्कार
अफरा तफरी, बयान बाजी
कैमरे की खिंचखिंचाव
सब, उदास, मायूस, निराश
व्याप्त-अज्ञात भय चिंता
भविष्य को लेकर कि
अब क्या होगा ?
कैसे होगा ?
ऐसे कब तक चलेगा ?

कल से लगातार चल रही
एक बड़ी खबर, 'ब्रेकिंग न्यूज'
टी-टवन्टी का विजेता कौन ?
क्या कोहली करेंगे कमाल ?
फिल्मी प्रमोशन
फैशन कलैक्शन
अभिनेत्री इंटरव्यूह, चर्चा-परिचर्चा
घण्टों से चल रही गुत्थम-गुत्था
ऐंकर, विश्लेषक, पक्ष-विपक्ष राजनेता

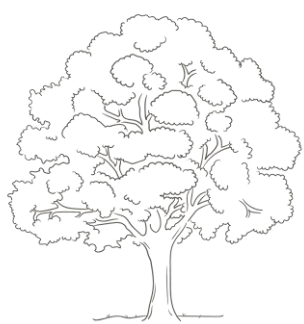

कौन बनेगा सी.एम., पी.एम. ?
फिर अबकी बार
बीच-बीच में विज्ञापन की भरमार
दवाई, मिठाई, बुढापे में ताकत का राज
तेल, सर्फ, साबुन, पेस्ट
और अश्लीलता का नंगा नाच
खबर में कहीं-कहीं
शराबी बेवड़ों की मसखरी ।
चारों तरफ सब ....
खुश, रोमांचित, उत्साहित से
बदल गई मनः स्थिति
भूल गये सब देश चिंता
कल से कल के बीच ।

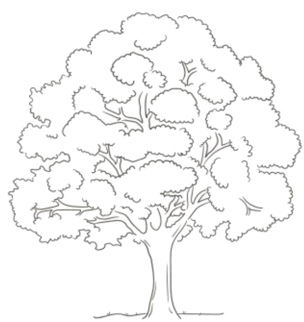

20- गाँव के कुत्ते

एक हड्डी या
एक रोटी या
एक हड्डी या एक रोटी सी
दिखने वाली किसी चीज के लिए
मेरे गाँव के कुत्ते
आपस में लड़कर,
कोहराम मचा देते हैं ।
ये लड़ाई हो सकती है ।
भूखे पेट की
अपने अधिकार की या
स्वाभिमान की ।
किंतु देखा है ये भी
दिन में, रात-आधी रात में
भूलकर कोहराम सब
आ जाते एक साथ सब
छोड़कर निज स्वार्थ
हड्डी या
रोटी या
हड्डी या रोटी सी
दिखने वाली चीज को ।
आ जाते, लड़ने को,
नये अंजान खतरो से,
दौड़ते-भागते, डरते हुए,
आ जाते सब एक साथ,
मेरे गाँव के कुत्ते ।

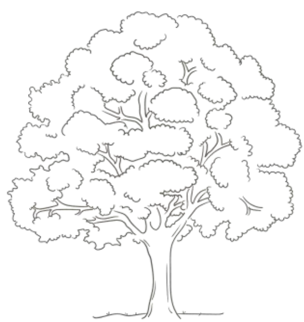

21- युग बदल गया है

खुलमुण्डी खोपड़ी
'टोले' पड़ने का डर
सहा है, तुमने ।
भाइटे की दोपहरी, नींव की छांव में,
माटी के खेल में, माटी की गुड़िया,
गोल-गोल पहिए, ट्रैक्टर, गाड़ी, लुटिया,
पकाई हैं चूल्हे में माटी की गाड़िया ।

झाड़ियों में सुनहरे, बेरियों के मीठे बेर
छुटाया कभी बबूल से गोंद
जंगल में बनाकर, ईंट का चूल्हा
उबाले कभी, आलू और बेर
चिड़ियों को पकड़कर,
उनको रंग से रंगना ।
खेत-खलिहानों में हिरन के बच्चे को
चाहा कभी दौड़कर पकड़ना ।

सुबह, मटठे में मोंड़कर खाई कभी
रात की मक्के की बासी रोटी
रखकर साग की मोटी परत
खाई कभी बाजरे की रोटी ।
बड़े-बड़े कढ़ाहों से,
उबल रहा फुदुक-फुदुक
कोल्हू पर गन्ने का रस,
ताजा गुड़ खाया कभी पत्ते पर रख ।
खेले हो होली

कीचड़- धूल में डूबकर
तरसे कभी, एक-एक पटाखे को
रोये कभी पापा से-
बहुत सारे पटाखे लाने को

चाँदनी रात में, घर के आंगन में,
बिछी खाट सबकी एक कतार में,
किस्से चले रात भर, और भरा
तुमने 'हुँकारा' सारी रात कभी
क्या कहा ?
नहीं, बिल्कुल नहीं ।
ऐसा कुछ भी नहीं,
तो लगता है-
"युग बदल गया है"

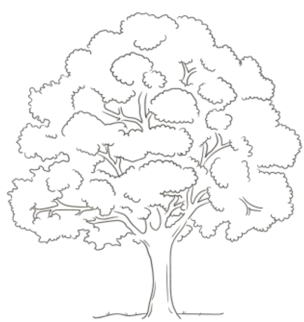

22- सूअर

यहाँ कुछ 'सूअर' हैं ।
जो सदैव-
अपनी थूथन घुसाये हुए
घुपुर-घुपुर ! खाते रहते हैं
और-
सब कुछ चट कर जाना चाहते हैं,
सब कुछ समेट लेना चाहते हैं ।
अपने बड़े पेट में ।
सब हजम,
तेरी खुशियां, मेरी खुशियाँ
मेरा निवाला, तेरा निवाला
न जाने, कब से ?
न जाने, कब तक ?

24- घिस सा गया हूँ

मैं !
घिस सा गया हूँ ।
जैसे, कोई चॉक,
जीवन का श्यामपट,
खुरखुरा – खुरदरा

औ’ बिखर सा गया हूँ,
जैसे रेत चारों तरफ,
जीवन का मैदान,
उड़ रहे तूफान जिसमें ।

टूटने, लगा हूँ मैं !
पत्ता जैसे चुरड़-चुरड़
जीवन का पर्वत
शनै-शनै जर्जर, खामोशी से ।

मैं, कुचला गया हूँ ।
जैसे- अदरक,
जीवन के खल्लड़ में,
प्रबल, प्रहार अनगिने ।

और उधड़ने मैं लगा हूँ ।
जैसे कपड़ा,
जीवन के धागे,
खिंचाव, टूटन, ऐंठन ।

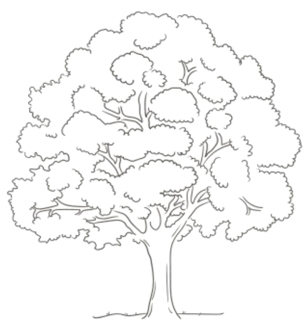

25- किल्ली

हाँ-हाँ
बात यहीं की थी ।
उस रोज भीड़ ज्यादा,
मैं भी कर रहा कोशिश
सड़क से गुजरने की
उस भीड़ में
उस भीड़ से
और तभी उठा-
शोर का बवंडर-
पकड़ों ! वो भागा पकड़ो !
पकड़ो – पकड़ो .....

और आखिर पकड़ लिया
भीड़ ने उसे जकड़ लिया
फिर, चिपट गई भीड़
जैसे-मधुमक्खी, मुँह पर-
पेट पर, हाथ पर,
नीचे से, ऊपर से
दायें से, बायें से
और शोर के बीच से
आ रही एक आवाज-
बाबूजी ! मैं नहीं, बाबूजी
मैं भू-भू- भूखा, रोटी,
बाबूजी ! बाबूजी !
भ-भ- भाई- भाई साहब !
मा- म- माफ- माफ, मैं नहीं !

पर न रुके,
थप्पड़, घूंसे, लात,
गाली और दुत्कार,
बरसते रहे लगातार
जैसे- गिर रहे ओले
बे-मौसम मूसला धार ।
फिर रुके-
शायद कुछ थके,
उनमें से कुछ हटे,
तो मैं देख पाया,
कम उम्र वह, डेढ़ पसली
मरियल सा करकल्ली
मुँह से खून, कर दी नीली काया
वह पड़ा रहा और रो रहा
सब चले गये लेकर
आँखों से नफरत तिरस्कार
और कोई कह रहा था-
"साला! शक्ल से चोर लग रहा था
मैंने, साले की कोख में-
चार घुसण्ड खींच-खींच मारे
किल्ली निकल गई साले की
मजा आ गया ।
आज, हाथ साफ हो गया ।
मैंने उस कोई से पूछा-
"भाई सहाब क्या हुआ ?"
"यहाँ कोई क्यों पिटा ?"
"क्या कोई मर मिटा ?"
वह बोला, बेरुखी से,
मुझे नहीं पता ।

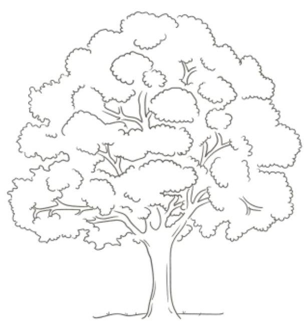

26- अज्ञात भय के दानव

मैं,
जब बालक थी ।
तब, खेलती थी
आंगन में, धूल में
पहनती थी-
फटी पुरानी एक फ्राक
और नहाती न थी,
रोज-रोज, साबुन से,
खुजाती रहती, दिन भर,
चिकटे, गुड़मुड़ी बालों को ।

खाती थी-
सुबह बासी रोटी ।
और रोती थी
स्कूल जाने को
तब जाती थी मैं
बकरी चराने को-
सुबह में,
दोपहर में,
गर्मी में,
जाड़ों में,
बारिस में,
घने जंगल में ।

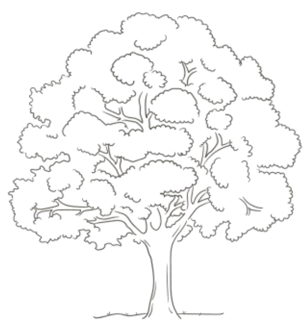

मैं,
सुन्दर हूँ ।
प्यारी हूँ ।
नटखट हूँ ।
कहते- सिर्फ मेरे बापू
मुझे दुलार करते बापू
गोदी में सुलाते बापू ।
मेरे बापू ...... अच्छे बापू
मुझे प्यार करते ....
सिर्फ मेरे बापू ।

अब मैं-
बालक नहीं हूँ
मैं बड़ी हो गई हूँ
अब सब कहत हैं-
मैं सुन्दर हूँ

बहुत प्यारी हूँ
चाहते है- सब छूना
और बात करना
धीरे से, आँखों में हँसते हैं
और कहते हैं-
कि मैं, सुन्दर हूँ ।

पर, अब
बापू नहीं कहते कि
मैं सुन्दर हूँ
वे हँसते भी नहीं,
जब से गये उस दिन सुबह
हो गया पूरा गांव इकट्ठा
ईख के उस घने खेत में ।
तबसे, रहते खोये-खोये
अब, वो मुझे देखते भी नहीं
पर देखती हूँ मैं
कातर बूढ़ी आखों में
तैर रहे हैं
अज्ञात भय के दानव ।

27- सत्य भीड़ है

अकेला हूँ ! जैसे-
चट्टान पर खड़ा कोई पेड़
विचार, मत, अभिव्यक्ति-
विश्वास के साथ ।
हूँ, बिल्कुल अकेला,
अडिग, इस क्षण पर
बदल भी जाऊँ- भविष्य में
संभव है ।
निश्चित भी क्या है यहाँ ।
किंतु इस क्षण मैं अकेला ।
और अखण्ड संसार के लोग
कर रहे कोशिश
बदल जाऊँ मैं-
अपने विचार, मत अभिव्यक्ति, विश्वास से
और कर रहे प्रस्तुत-
ग्रंथ, शास्त्र, विधि-विधान
तंत्र, मंत्र, जंत्र, तर्क-वितर्क,
प्रमेय, निर्मेय, सूत्र
सब साक्ष्य
पर, अकेला खड़ा हूँ
मैं अडिग
सत्य, भीड़ हो
यह सत्य भी नहीं ।

28- देशद्रोही

घास जैसा-
रौंदा, कुचला, मसला गया
पैरो से
मैंने कभी प्रतिकार नहीं किया,
कभी अधिकार नहीं मांगा ।
जुबान पर लटका दिया भार
परम्पराओं ने ....
मैंने सहलाया उनके पैरों को,
कमर पर उनका भार सहा ।
ये सिलसिला चलता रहा है
सदियों से ....

और, जब आज
मांगा-
अधिकार
समता
न्याय
रोटी

आज मैं- देशद्रोही
गद्दार हूँ ।

29- शिशु

खुशियाँ आईं-
सुन्दर आँखे-
'गहरी, काली'
'बड़ी-बड़ी'
कोमल काया-
'गुद-गुद'
'लुज-लुज'
जैसे मखमल
हँसता-
'खुल-खुल'
खिल- खिल
दिखता-
'मुल- मुल'
और कोई, आये पास जरा
देता भुजा प्रसार
जीवन से जीवन क्रम
ये, देखो जीवन अवतार ।

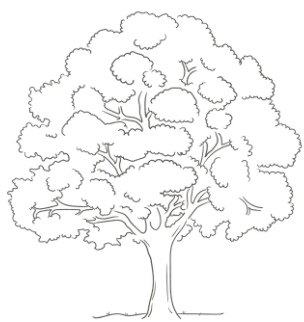

30- धरती बेरंग

गाँव / शहर में,
पसीने से लथपथ मजदूर
के ठहाके सुने ।

फुटपाथ, ठण्ड-गर्मी में
मोची को,
गुनगुनाते सुना ।

जेठ दोपहरी,
सिर पर घास का गट्ठर,
उनको गाते सुना ।

अधनंगे भूखे
फकीर-बाबा को
हँसते सुना ।

अच्छा है, कि
हँसी, खुशी, मुस्कराहट
खरीदी नहीं जा सकती,
नहीं तो धरती बेरंग होती
सदा के लिए ।

31- स्वर्ण तन्तु

पौधा-
खेत मेंढ़ पर खड़ा,
कोमल पत्ती हरी-हरी,
हवा चले लहराती, इठलातीं ।
उर्वर भूमि, जल भरपूर,
धूप-धाप की कमी नहीं,
जीवन में उन्नति के संसाधन,
उसके पास कोई कमी नहीं ।

अवश्य बनेगा महावृक्ष वह
जिसके नीचे कीट पतंगे-
पक्षी-परिन्दे, खरगोश हिरन और
शेष जन्तु सब आश्रय पाया करेंगे
सबको, उम्मीद बहुत
स्वप्न बड़े सजा लिये थे

किन्तु जाला बनाकर आवारा मकड़ियों ने,
पौधे को ढक दिया,
जाला-मुलायम, मजबूत, कोमल
चिपट-लिपटा कब बदन पर ?
अहसास होने न पाया पेड़ को ।
सूरज चमक में स्वर्ण तन्तु जैसा,
चमकता लहराता वह जाल,
ले लिया आगोश में उन-
कोमल हरी पत्तियों को ।

जाले में भर गई धूल जो,
ओस से पत्तियों पर चिपक गई ।
साँस भी अवरुद्ध कर दी,
पड़ने लगी पीली काया पौधे की ।
जाले धूल ने बना ली
परत मोटी, झूलती हवा में जो
और इसमें ही चींटियों, मधुमक्खियों ने
भी बना ली अपनी-अपनी बस्तियाँ

और आज जब निकला मैं घूमने
उस नन्हें पौधे को देखा
बेसुध सा, मुर्छित खड़ा हुआ,
तभी हवा भी मिलने चली आई ।

गले मिली, किंतु
वह हिल न सका था
जकड़ा उलझनों में

थे संसाधन और
स्वप्न भी
किंतु व्यर्थ सब
नहीं थी-
हर पल तन-मन सजगता

मैंने ! जमीन से एक लकड़ी उठाई
हटा दिया फिर उस जाले को
जाला हटा, धूल झड़ी
कूद गई मकड़ियाँ पेड़ से
चींटियों में मच गई भगदड़
अब हँसने लगा हरी पत्तियों
के साथ सूरज भी
पौधे ने लहराकर स्वागत किया
कुछ नव कोपलें मुस्करा रहीं
मैं भी भर मन में सुकून
फैंक लकड़ी वहीं,
आगे बढ़ चला ।

32- विचार

'विचार'
एक जंगल है ।
नन्हें पौधे, फूलों वाले खुशबू वाले
कंट कटीली झाडियाँ,
लटकी फैली बेलों ने,
बुना जाल पेड़ों में ज्यों मकड़ियाँ ।
कुछ बड़े पेड
कुछ बहुत बड़े जिनके
पांव में लिपटी मासूम हरियाली ।
जंगल में जुगनू जगमग, ज्यों
तारे टिमटिम आसमान में
रंग-बिरंगी तितली फूल-फूल
चह-चह चिड़ियाँ, कूह-कूह कोयल
सिंह की गर्जन, भाग रहे सब
प्रतिध्वनित,
शून्य से,
शांत, अदृश्य ध्वनि संगीत
स्पन्दित हृदय तारों को चुपके से ।
और यहीं-
विशाल दरख्त महावृक्ष
आगोशित सभी को अपने
विस्तार से,
फैला दीं सहस्त्रों भुजायें
समुद्रों के विस्तार तक, और
धरा को चीर लटकी जड़ वायु में
झूलते जीव करते कोलाहल ।

महावृक्ष का विशाल तना कि
लिपटे सहस्त्रों हिम पर्वत
चटकन गहरी चिपटी
सूखी नदी हजार ।

महावृक्ष ने,
चूस लिया जल खनिज धरा से
और जीवन सम्भावनायें
बंधक बनीं जीवन वायु
प्रकाश को उतरने न दिया
हुआ घना, घुप्प-अंधेरा
टपकन प्रकाश की यदा-कदा
बिखरे स्वर्ण कण कोयले में ज्यों ।
ढक दी भूमि, पात-छावं से ।
बज रही दुन्दभी चहुँदिश, पर
कितने दिनों तक ?

घुट गये, हुआ निष्प्राण जीवन
मर गये मासूम पौधे
नहीं खिल रहे पुष्प, अब
कोमल पातें सूख गई
शेष रही खड़-खड़ केवल
उड़ गये पक्षी परिन्दे
और तितली भी ।

आज वह छोटी चिड़िया
फुदक-फुदक हर डाल डाल भी,
महावृक्ष के सबसे ऊँचे पत्ते के गिरने पर
उड़ चली दूर कहीं,
वहां-जहां, फैली हरियाली

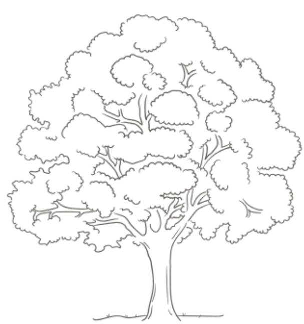

उगते पौधे और बेलें भी
खिल रहे फूल, मंडराती तितली
मकरन्द खुशबू, चहकती चिड़ियां
अब, आ रही बहार
साथ-साथ ।

33- मैं ऐसा तो नहीं था

स्मृति की मन कोठरी से,
जीवन ! मेरो दोस्त
आ गये तुम अचानक बाहर आज
और मैं ! हो गया उदास, बहुत
मुझे माफ करना
मेरे तुच्छ व्यवहार, हिंसा के लिए
किन्तु, मैं ऐसा तो न था ।
तुम ! मोटे थुल-थुल से
नीली शर्ट के बटन, खिंचे पेट पर
पहने सफेद पजामा, ऊँचा-ऊँचा
बैठे रहते सबसे पीछे
मोटे नींव वृक्ष तले
लिपी भूमि, टाट पर
स्कूल के मन्दिर साये में ।
प्रतिदिन, सुबह खुलने पर स्कूल
विद्यार्थियों का बदल ही जाता स्थान
पर बैठने का स्थान तुम्हारा,
था निश्चित, था इच्छित ।
घर से आते तुम लेकर
एक छोटे कपडे के झोले में
एक दो मुखविहीन किताब
और मुड़ी-तुड़ी एक-दो कॉपियां
खुट्टल सी पैंसिल और
कंचे दो-चार, छीलन पैंसिल की ।
बैठे रहते सबसे पीछे
हाथ झोले में और लिए झोला गोद में

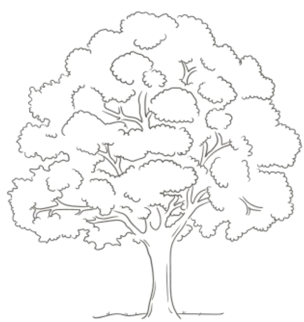

स्वयं को समेटे हुए
शांत-शांत और शांत ।

था, पढ़ने में कमजोर में भी तुम्हारी तरह,
तीसरी कक्षा की छमाही परीक्षा में
आये चालीस बटा दो सौ, प्राप्तांक
मैं खुश था, सबसे अधिक
कर दी थी घोषणा, अपनी उपलब्धि की
सभी के साथ मैंने, बाजुये उठाकर
बिना शर्म भय लज्जा ग्लानि
अंक तो अंक, भेद कैसा ?
मैं अनभिज्ञ
किन्तु-
घर तक पहुंचते-पहुंचते,
जाने कैसे हो गया अहसास ?
कि अंक कम हैं, पढ़ना होगा
नहीं तो बाबूजी को बुरा लगेगा
सब कहेंगे- 'मास्टरजी का लड़का'-
पढ़ने में कमजोर है, इसका-
ध्यान कहीं और है ।
मैं, पढने लगा प्रतिदिन
इसका मुझे फल मिला
और हो गया होशियार मैं ।
बढ़ गई प्रतिष्ठा मेरी
अपनी क्लास में, स्कूल में

मेरे सहपाठी 'जीवन', पर
तुम नहीं बदले,
रहते शांत, पढ़ाई से दूर
मासूम तुम, कोई नया अहसास नहीं

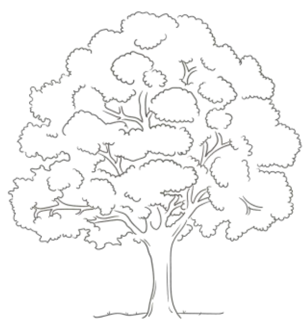

नटखट, बालहट, हुड़दंग......
सबसे दूर ।
बैठे रहते शांत
थामे गोद में थैला
घण्टों तक जमकर एक ही स्थान पर
जैसे कोई तपस्वी साधना में लीन

किंतु–
तुम खड़े किये जाते प्रतिदिन
प्रश्नों के उत्तर बताने के लिए
और न बताने पर,
पिटने के लिए
मास्टर जी द्वारा मेरे द्वारा ।
आज, आत्मा की अगाध गहराई तक,
दुःख है मुझे कि–
तुमको पीटना मुझे अच्छा लगता था
मुझे, ये पुरस्कार लगता था
मास्टर जी के आदेश पर
तुम्हारे मोटे–मोटे गाल पर
जोर से थप्पड़ यथाशक्ति
तुम भींच लेते आँख और
छप जातीं लपलपाती उंगलियां गाल पर
सुनकर, चटाक ! की आवाज
मुझे अच्छा लगता था
शायद, तब मैं पत्थर दिल था ।

मास्टर जी–
तुमकों प्रतिदिन पीटते
सर्दी की ठिठुरन में जब
इकलौती पहने शर्ट ठिठुरे रहते

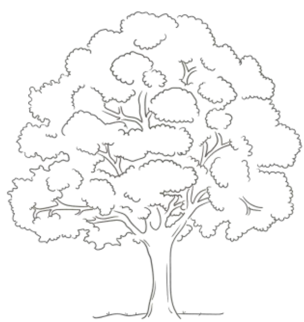

तब मास्टर जी-
लेकर बकांद का गीला डण्डा
पिल पड़ते, तुम्हारी कमर पर
होते प्रहार, 'सटासट'
दर्द से तुम इठ जाते
हर प्रहार, दर्द, भय...
और तुम असहाय ।

निश्चित ही
छप जाती होंगी,
नीली-नीली गहरी रेखायें,
गीले-गीले डण्डो से पीठ पर ।
और माता जी जब देखती होंगी
हृदय उनका फट जाता होगा
पता नहीं क्यों ?
क्या कोई आशा ?
आ जाते तुम अगली सुबह फिर
पिटने को ही तो-
मास्टर जी से, मुझसे अन्य से ।

मास्टर जी का पीटने में यश था
बच्चे घण्टों मुर्गा बनकर
फिर सह लेते डण्डों का दर्द-
डण्डे के टूटने तक, और इस तरह
मास्टरजी चर्चा में रहते
और बच्चों में अपने खौफ से हर्षाते ।
बाबू जी ने-
मास्टर जी को कई बार समझाया
"जीवन को मारा मत करो"
"यह सीधा साधा बच्चा है"

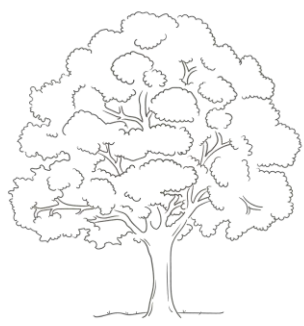

क्या होगा रोज पीटकर,
इसका पढ़ाई में मन नहीं है
यह अबोध, बिल्कुल गऊ है
फिर सबकी क्षमता अलग-अलग हैं
पढ़ाई ही सब कुछ नहीं है ।
किन्तु, सभी का समझाना सब बेकार
फिर माने भी क्यों ?
हैडमास्टर, थे आखिर
कहते भी थे – "आई एम हैड इंस्टीटयूट"

मेरे दोस्त जीवन
उन दिनों
तुम रोते थे या नहीं
मुझे याद नहीं
किंतु-
स्मृति की मन कोठरी से
जब भी बाहर आ जाते तुम
मैं रोता हूँ,
मुझे माफ करना
मैं ऐसा तो नहीं था ।

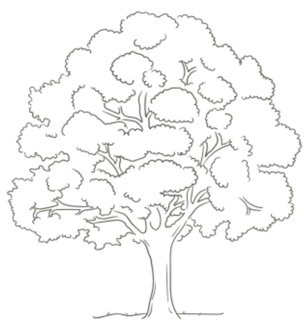

34- सडांध

भव्य भवन,
सूरज भी रोज
झुक कर सम्मान देता ।
गगन चुम्बी बुर्ज पर बैठते थे बाज
उतरते शिकार करने-
वट वृक्ष, भवन के आंगन में ।
और वट वृक्ष की विशालता कि
आकाश बिजलियाँ भी लुप्त, वितान में
सहस्त्रों मानुष नहीं पकड़ सकते
एक साथ उसके तने को
जड़े करती स्नान
उतरकर उस गहरी वाबड़ी में
वट वृक्ष के नीचे और
लौटती थीं सूर्य किरणें
कई दिनों बाद, पाताल गहरी जो ।
और वृक्ष की
असंख्य डाल, आवास, वास न जाने
कितने पक्षी परिन्दे
मधुर कलरव, कूक कोयल
गुंजित व्योम में

आज,
उठ रही सडांध
बावडी जल से
पुरानी, ठहरा हुआ सो सड़ गया
उड़ गये पक्षी परिन्दे

शेष कांव-कांव
गिर गये वृक्ष पात,
प्रभाव से,
बावडी दीवार भी अनभिज्ञ
आ गया बसन्त कि
वह रही सुगन्धित बयार
लटकते चटक लाल पुण्प
बावड़ी दीवार से भी मौन
झांकते रहे
खुश स्वयं के प्रतिविम्ब से, जो
आत्म गौरव से भरे हुए ।
कुछ कूद गये स्नान को, किरणों-
के साथ ही बावड़ी जल में
जल स्याह ठण्डा, अंधेरा
उठ रही भुन-भुन की आवाज
लटकते कीट मकड़ी जालों से
झांकता सूर्य स्वयं का प्रतिबिम्ब
जो मात्र एक झिलमिलाहट
और रगड़ते रहे शरीर
न उजला हुआ
सैकड़ों चक्षुओं के अक्स भी
आशा लिए और
वट वृक्ष के पात सब
घुल गये
सड़ गये ।

35- अदृश्य दीवार

अदृश्य दीवार
एक अंगुल नाक के पास
पार करना संभव नहीं
अब न भविष्य में न पहले कभी
पर रही सदा मानव में उत्सुकता
कि जाने सहस्य उस पार क्या
प्रयास बहुत अनगिनत
निष्कर्ष क्या ?
क्या शून्य ही
कुछ रेंगते रहे दीवार के पास
पर नहीं चाहा कभी
दीवार छूना न देखना
वे ज्ञानी बनना नहीं चाहते
'अज्ञानता ही उनकी सबसे बड़ी पूँजी है'

कुछ दावा करते हैं-
कि जान लिया उन्होंने सब कुछ
उस पार क्या है ?
कर लिया रहस्यों का रसपान
इसलिए बैठ ऊंचे मंच पर
करना चाहते संबोधित
सुनें सब सम्मान दें
आँख पलकों पर बिठा
दुनिया के सब एशो आराम
डाल दें कदमों में उनके
प्रायः इसमें वे सिद्ध हस्त हैं

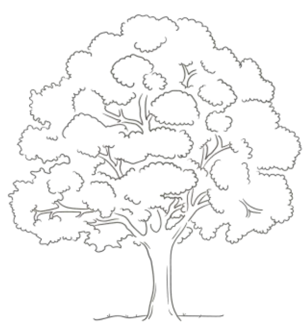

उलझे बालों जैसी बातें, मासूम-
मेहनतकश लोग और
भ्रम ही भ्रम

कुछ धुन के पक्के
खपा दिया जीवन
चलाते रहे मथनी, तर्क वितर्क-
ज्ञान पात्र में ।
जंगलों में खोजते रहे उपाय
कि कोई निष्कर्ष, वे चढ़े-
किन्तु गिरे, फिर चढ़े बारम्बार,
वे सच्चे थे और छू सके
ऊंचाई जितनी कि कोई और नहीं
किंतु सफल नहीं वे भी
न जान पाये
सत्य, उत्तर अनसुलझे प्रश्नों का
वास्तविक निष्कर्ष वहीं जो था
रेंगते लोगों का-
न गये पास कभी
ऐसा भी नहीं कि वे कुछ जान नहीं पाये
किंतु सच तो यह कि उन्होंने
अपनी शान में कशीदे नहीं गढ़े
व्यक्त की मात्र सम्भावना ही
दावा सिर्फ यह कि – "मेरा सत्य मेरा है"
तुम्हारे लिए भी हो इसके लिए
अदृश्य दीवार पर चढ़ना होगा-
अपने प्रयास से ।
प्रायः रहे वो मौन
बोले भी तो इतना जैसे
हिला एक पात वन में

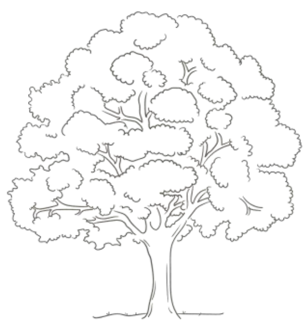

वे जानते थे
जो कहेंगे इसका साक्ष्य क्या ?
क्या थोथी कल्पना, अनुमान-
उनकी महानता का आधार होंगे ।
उलझ जायेगा संसार ज्यों पेड़ पर
लटकते घुघ्घुओं के घोंसले
यदि जगत मान भी ले उनको सत्य
क्या होगा उपाय यह आखिरी
मानव जात के कष्ट का ।

सच तो यह कि
वे डर गये,
रहे मौन ही एकान्त में
कही हो न जाये सामना 'उनसे'
रेंगते रहे जमीन पर जो
संघर्षरत, दुनिया को संवारा
झाड़ियों को साफ कर खेत बनाये
बीज डाल, सींचा पसीने से
तब कहीं मानव का पेट भरा ।
वे लगे रहे अपनी धुन में
बीनते रहे चुभते कंकड़ों को
चल सके नंगे पांव तब
कमर झुका, ले लिया सब भार
कि सीधे खड़े हो सके ।
नहीं बुने मन के जाले
इसमें मानवता उलझी नहीं
इस हेतु
वे सब कृतज्ञ थे ।

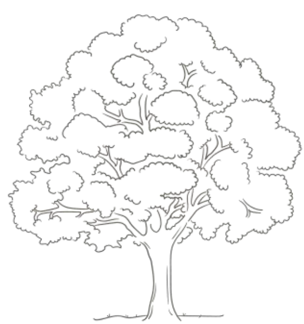

36- कबाड़

त्यौहारों पर
किये जाते हैं- घर साफ
निकाल दी जाती है- अनुपयोगी वस्तुयें
अनुपयोगी अर्थात- कबाड़ा
जिसकी जरूरत नहीं घर में
बगैर इसके कोई काम प्रभावित नहीं होता
और रोज-रोज देखकर इसे-
मन में खीझ सी कौंध जाती है,
गुस्सा आता है ।
अब बर्दास्त नहीं कि घर में रहे
इनसे घर में स्थान घिरा है, व्यर्थ ही
कबाड़ी नहीं आया इधर.......
कोई मुफ्त में ही ले जाये
तो अच्छा रहे, निजात मिले ।

जब खरीदा यह सामान, उससे पहले
सपनों में धीरे-धीरे बड़ा हुआ
होने का अहसास, गुदगुदा जाता मन,
आया जब-जब यह घर में-
आँखें चमक गई घर भर की
और आज घर आने वाला है
नया सोनी टी.वी.
दादाजी ने अपने कानों से
सुनी यह बात-
बहू कह रही खुश होकर
वाहर पड़ोसन से ।

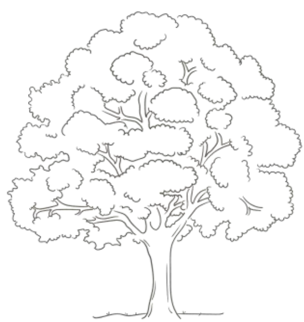

और दादाजी देख रहे
कबाड़े को
जंग लगी छोटी साइकिल को
महीनों रोया, वह
और कारखाने में जद्दोजहद के बाद
खरीद पाये थे वो
अपने बेटे की खुशी के लिए
'एक छोटी साइकिल'
रुँध गया उनका गला
आँख बंद कर लेट गये
घर से बाहर, अपने बिस्तर पर
जो उनका था ।
सब समय का खेल है ।

37- पूँछ

मेरे मुहल्ले का कुत्ता
“भूरू”!
सबका, बहुत प्यारा है ।
पर, उस दिन नाराज सब
काट लिया उसने और
तोड़ लिया था-
गरम गोश्त का टुकड़ा
किसी की पिण्डलियों से ।
न जाने, क्यों काटा ?
पर आँखें उसकी कह रहीं-
दबेगी यदि ‘पूँछ’ मेरी तो
“काटुँगा” ही
डालकर, दो टूक रोटी के
मेरे साथ मनमानी नहीं कर सकते ।

38- सफर

यह तो तय था कि
इस सफर में,
अकेले ही चलना है
और ये साजिशों का दौर कि
छिटक कर गिर गया कहीं दूर जैसे
गरम कड़ाहे से कोई दाना ।

भीड़ आस-पास
सटकर खड़े हैं लोग
आँखों में अपरिचय, संशय-सन्देह
और प्रश्नों का काजल
चेहरे पर,
खुदरी सतह सी बेरुखी है ।

मेरे पास रिश्तों की
एक लम्बी फेहरिश्त है
जिसे रखता हूँ-
अपने सीने से लगाकर ।
मैं !
इस फेहरिस्त को पढ़ता हूँ
और पुकारता हूँ-
किंतु सब खामोश
व्याप्त होती तब
समुद्र की अगाध गहराई सी शान्ति
और स्वयं को अकेला पाता हूँ
मैं सफर पर-
अकेला चलता जाता हूँ ।

39- फफूंद

धरती पर फैल गये हैं
कवक-जहरीले जैसे
रोटी पर हरी, काली फफूंद ।
शेष नहीं कोई कोना
उगा न हो जहाँ
खो सी गई निज पहचान
असलीपन रूप रंग स्वाद....

धरती स्वेच्छा से
मुस्करा नहीं पा रही
कोई निर्णय भी नहीं
बेबस सी अब और
निर्देश देने लगे हैं,
मर्जी थोपने लगे हैं
आजकल के लोग
हालत हो चली दयनीय
उस वृद्धा जैसी
खांसती दिनभर, खटिया बाहर
दरवाजे के पास ।
देख सके ।
आते जाते लोगों को
और परिवार जनों को ।
वह देखती सभी को
कुछ कहती भी, किंतु
कोई रुकता ही नहीं
कोई सुनता ही नहीं

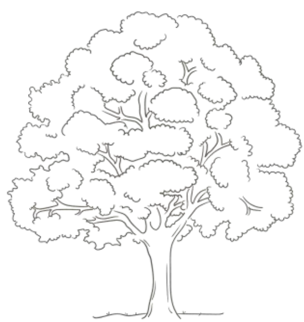

और हाँ जब रुकेंगे
तब देते हैं सब-
निर्देश, ज्ञान, रोटी नहीं ।
चाहते हैं- बदलाव
आदतों में, विचारों में
बदलना चाहते – सब कुछ ।

पहले, माँ !
अपनी स्वेच्छा से
कुछ भी करती थीं,
हँसती भी थीं- खिलखिलाकर
जना, पाला-पोसां बच्चों को जैसे
संवारती धरती माँ सबको ।
अब यही-
संवार नहीं रहे माँ को
बल्कि बदल रहे हैं-
अपनी आवश्यकतानुसार
स्वार्थी सब...

पर, यह माँ सहन कर लेगी
अनदेखी, बेरुखी तुम्हारी
और रो देगी चुपके से-
आंचल में मुँह छिपाकर
कि कोई देख न ले
पर, वह माँ (धरती)
सहन नहीं करेगी
तुम्हारी गलतियों को,
तुम्हारे गलत व्यवहार को,
तुम्हारी अनदेखियों को,

मिला देगी खाक में-
सभी को,
समेट लेगी विषैले कवकों को
जो फैल गये हैं, धरती पर,
कुकुरमुत्तों की तरह ।
फिर से भर जायेगी धरती
रंग, रूप, स्वाद खुशबू
के साथ ।

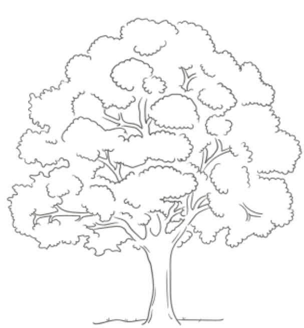

40- धन्यवाद

मैंने–
जंगल साफ किये और
खेत बनाये
खेत जोतकर–
बीज बोया ।
फिर सींचा उनको
बड़ा किया,
काटी फसल,
दाने आये,
पीस उन्हें, बना आटा
माँ ने चूल्हें पर तपकर
रोटी बनाई,
रोटी खाकर,
पेट भरा सबका ।
फिर हल लेकर
खेतों में, मैं
यह क्रम अविरल .....

मेरी इस यात्रा में..
धन्यवाद,
उस, काँटे को
जिसने मेरे पैर का कांटा निकाला
बना दिया फिर चलने लायक ।
उस रोटी को
पेट में जलकर जिसने
कार्य शक्ति दी ।

उस शीतल जल को
जिसने है प्यास बुझाई ।
उस हवा को–
तेज धूप गरमी में
जल गया बदन, तब
चुपके से शीतल हवा ने
बदन को मेरे सहलाया
धन्यवाद, उस नन्हीं चिड़िया को
थक कर, पेड़ बबूल के नीचे
माटी पर मैं पड़ा हुआ
तब चिड़िया ने
गाकर गीत सुरीला
निद्रा सागर में
मुझे डुबोया था ।

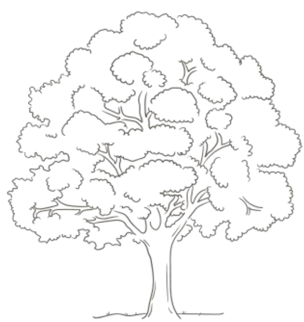

41- खाली हाथ

धुंआ उठ रहा है,
आग भी है
उधर, मानवों की बस्ती है ।
तुम डरों मत !
आओ इधर बैठो, और
रख दो ये पुरानी किताबें
चिपटाये न जाने कब से ?
मैंने भी रख दीं और
सब चमकीले पत्थर भी ।

तुम्हारे हाथ और मेरे हाथ भी
हैं, अब खाली, खोलों इन्हें
दिखेगी गहरी रेखायें
हथेली में गाँठ भी ।
ये कठोर खुरदरे हाथ
याद दिलायेंगे
कैसे हमने धरती को स्वर्ग बनाया ।
तुमने काटे झाड़ झंकाड़ कटीले पेड़
मैंने खेत बनाये ।
तुमने रोपित किया बीज
मैंने उनकों सींचा
हम दोनों ने मिलकर
मानव जाति का पेट भरा ।

कुछ खाओगे ?
ले लो चाय कॉफी
अरे इससे पहले गले तो मिल लो
अपनेपन का अहसास तो कर लो
यार ! तुम्हारे बदन से,
दुर्गन्ध पसीने की आती है ।
मेरे बदन में भी,
यह कम न होगी ।
तुम घबराना मत !
मेरे हाथ अब खाली है
तुम पर आँच न आने दूंगा
उसने भी
खाली हाथ अपने दिखलाये ।
रख दिये सभी प्रतीक
विरासत के पोथे, आज
मन में निश्चय,दृढ़ प्रतिज्ञ
धुंआ गुबार थम गया अब,
थम गया दंगा ।

42- स्कूल में प्रवेश

बुढ़िया हो गई तू,
तेरी उम्र ही क्या है ?
ज्यादा से ज्यादा-
चालीस बयालीस साल
मुझसे बहुत छोटी ।
तू, अब-
साठ साल की अम्मा लगती है ।
उसकी भी सहमति-
पतली सी गर्दन ढुलक गई,
एक तरफ सिर हिलाने में ।
आंखें बैठ गईं, चेहरा पिचका
दांत बज जाते हैं, बात करने में
शरीर पर मांस न बचा-
खाल के नीचे छिप गया हो
तो अलग बात ।
हाथ की कलाई पेंसिल सी
बेहद पतली, टंगी जिसमें
दो चूड़ी पुरानी लाल रंग की
काले हाथों में चमकती हुई ।

याद है मुझे-
जब खोली आंखें
तब माँ ही मुस्कराई थी बस
और स्वयं वह रोई-
भूख से व्याकुल, खाली पेट लाई ।
बाकी परिवार जन उदास

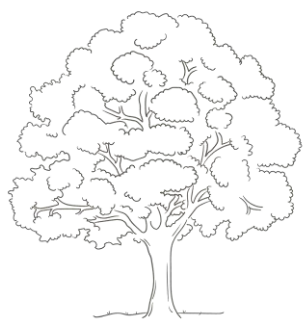

खामोशी, विस्फोट के बाद कोई सन्नाटा ।
बचपन में, वह रोती बहुत थी
छोटी थी, पर टिटियाती रहती दिन भर
पर सच तो यह-
बचपन में पूरा पेट ही नहीं भरा ।
चचोरती रहती दिन भर
माँ के स्तनों को ।
पर माँ के पास दूध कहाँ
सूखे टिक्कड़ से दूध नहीं बनता
उसने जल्दी ही अन्नखाना शुरू कर दिया
और ज्यादा खाने से
पेट दिखता तरबूज जैसा-बड़ा,
बड़े बुजुर्ग उसे 'पेटुलिया' पुकारते
इसी नाम से वह दौड़ी आती
दुकान से छोटे-मोटे सामान खरीदकर
ताई चाची, भाई....... सबको पहुँचाती
और बदले में खाने को कुछ
नहीं तो प्यार सूखा-सूखा ।

और उस दिन-
वह भी जाना चाहती थी- स्कूल
देखा उसने बच्चों को जाते हुए
किंतु जा न सकी
वह रोती रही, पर जाने न दिया
बैठा दिया खाट पर जहाँ
सोया था छोटा मुन्ना
दे दिया उत्तरदायित्व
पिता के निर्देश-
"यहाँ से उठना मत"
और वह बैठी रही गुमशुम

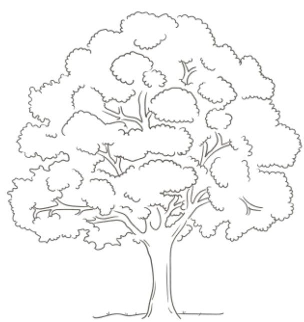

खिलाती रही भईया को दिनभर
अब रोज ही-
कमर पर बिठा घूमती रहती-
खिलाती रहती गांव भर में ।

उस दिन भी-
वह जाना चाहती थी स्कूल
पर पिताजी ने जाने न दिया ।
भेज दिया खेत पर बकरी चराने
अब वह रोज-
जाती थी बकरी चराने
सुबह जगकर, बांध दो रोटी
निकल जाती बकरियों के साथ
पूरे दिन धूप में
चेहरा हो गया काला-उसका ।
शाम को-
वह सिर्फ रोटी खाती
छोटा भाई दूध भी पीता था ।
मन तो उसका भी करता
कि पिये दूध वह भी
पर कह नहीं पाती
कभी-कभी रो भर देती थी ।

चौदह साल की ही उम्र
होने लगी व्याह की चिन्ता
घरवालों को, मुहल्ले वालों को भी
पन्द्रह तक होते-होते
विवाह सम्पन्न हुआ, उस दिन
सभी खुश थे, था हर्षोल्लास
वह भी हो गई थी शामिल

सभी की खुशी में.....
न जाने क्यों ?
और सोलह तक 'माँ' बन गई
फिर हर साल और इस तरह
तीन बच्चों की माँ बन गई
माँ बच्चों को सींचने वाली
उसने भी निचोड़ कर पिला दिया
अपने छाती का पूरा दूध

वह सूख गई-
हड्डियाँ हो गई खोखली
तीस तक आते-आते
उभर आई थी- झुर्रियां
छट गया मांस शरीर से
पैंतीस की उम्र में बन गई- सासु माँ
घर में बहू, एक कमरा बरामदा
छिन गया घर अब
आ गई उसकी खटिया बाहर
रात में ही सो पाती और
दिन में रहती खड़ी खटिया
घुमाती रहती मुहल्ले में
कमर पर बैठाकर पोते को
मुहल्ले भर में बतियाती
और कहती-
"उसका बेटा अच्छा तो है पर,
वह चुप रह जाता है जब,
बहू मुझसे लड़ती है ।"
बहू अक्सर कुसकुसाती है-
रोटी के समय ।
चिल्लाती है बात-बात पर

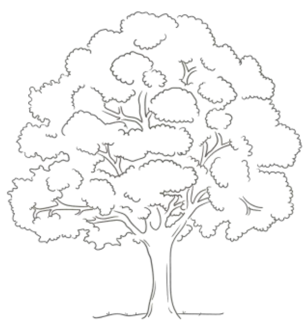

ऐसा कई बार हुआ और
कई बार उसने नहीं खाया-
नाराज होकर ।
तब बेटे ने भी
न कहा, न की खुशामद
रही भूखी कई छाक और
करती रही प्रतीक्षा भूखे पेट
कि कोई कह दे झूठे को ही कि-
“रोटी खा लो अम्मा”
पर कोई नहीं आया
न अपने न पड़ौस के
और न मुहल्ले के ।
अब वह-
खा ही लेती है रोटी
बहू चाहे कितना भी कुसकुसाये ।
पर ये (पड़ौसी, मुहल्ले)
सब लोग-
तब जरूर आते है
और हँसते है, जब-
बहू मुझसे लड़ती है
कोई नहीं समझाता उसे
हाँ, मुझ पर ही हँसते हैं
और कहते हैं-
कि बुढ़िया तू सठिया गई है ।
मैं यह सुन चुपके से-
रो भर देती हूँ ।
मेरा रोना भी बेकार
फंस जाता है गले में ही
और फटी हुई आवाज
बेढंगी निकलती है

सुनकर, मुहल्ले के लोग-
हँस देते हैं, और
मैं बन जाती हूँ तमाशा
लोगों का अक्सर ही

उस दिन गांव के प्रधान ने
नमस्ते की मुझसे और
बताया मुझे
भाभी! सरकारी स्कूल में
करोगी नौकरी ।
सुनकर, वह चौंक गई-
"नौकरी"
हाँ, नौकरी !
छोटे बच्चों का खाना पकाना है ।
दो हजार रुपये मिलेंगे
कल चलना मेरे साथ स्कूल में
वह खुश थी, नौकरी लग गई
अगले दिन,
सुबह की चटकती धूप
वह पहने गुलाबी धोती
प्रधान जी के पीछे-पीछे
स्कूल गई
मन में खुशी अपार
रास्ते भर उमड़ते रहे पेट में-
उमंग के बादल ।
रास्ते में कुछ लोगों ने
सम्मान से राम-राम कही
तो अनेक बूढ़े देवरों ने
छेड़ते हुए फब्तियाँ कसीं
हँसते-हँसते

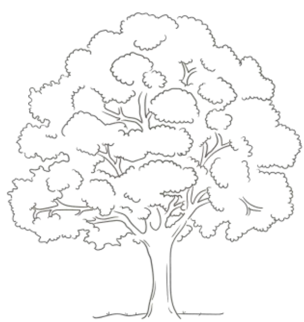

“और भाभी कहाँ चली
बन ठन के”
गजब ढाय रही हो
उसे बुरा न लगा था
आदत थी, उसको
फिर गरीब की औरत
पूरे गांव की भाभी होती है ।
यह बात वह जानती थी
अपनी हद पहचानती थी ।

अब पहुँच गई स्कूल
स्कूल का बड़ा गेट
लोहे का फाटक वाला
प्रधान जी ने-
हाथ से हटायें धक्का दे
खोला इसे ।
वह भी पीछे-पीछे
झिझकते, सकुचाते हुए
आ गई स्कूल में ।
बच्चे खेल रहे थे
कुछ खाना खा रहे थे
स्कूल में खूब चहल-पहल
वह खड़ी, देख रही
अदभुत नजारा
खो गई बचपन में-
जब उस दिन-
वह भी स्कूल जाना चाहती थी
देखा था उसने
अपनी उम्र के बच्चों को जाते हुए ।
वह रोती रही, पर

न जाने दिया, बिठा दिया
भाई के पास ।
वह स्कूल जाना चाहती थी
पर न जाने दिया पिता जी ने
और भेज दिया बकरी चराने को ।
आज वह आ ही गई
स्कूल में पहली बार
हो गई थी, जिन्दगी की
एक बड़ी हसरत पूरी ।
पता नहीं कब ?
ढुलक गये आँखों से आंसू
उसने आंसू पौंछ लिये
प्रधान जी कह रहे थे-
भाभी ! तुम बुढ़याय गई हो
तुम्हारी उमर ही क्या है
चालीस-वयालीस साल
मुझसे बहुत छोटी,
साठ साल की अम्मा लगती हो ।
उसने सहमति से-
पतली गर्दन हिलाई
अब गर्दन हिलाने में-
ढुलकी नहीं
रही तनी सीधी ।
तभी एक छोटी बच्ची पास आ
“अम्मा नमस्ते !”
नमस्ते बिटिया !
रख दिया हाथ सिर पर
दे दिया आशीर्वाद बच्ची को ।
प्रधान जी मैं आ जाऊंगी-
कल से स्कूल ।

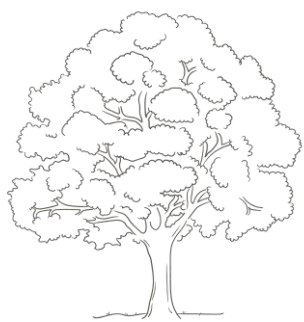

कभी नहीं करूंगी छुट्टी
और आखिर अम्मा ने
पा लिया था स्कूल में प्रवेश ।

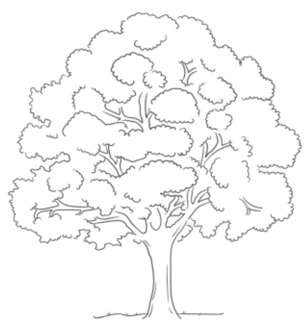

43- जल गये ख्वाब सब

सुलझाते रहे-
उलझनों को दोनों
समझाते रहे
दिन-रात दोनों
अपने-अपने घर
पर, समाज के भार से
दबे हुए सब
कोई सम्भावना नहीं
संवेदना नहीं
और मिली निराशा
जल गये ख्वाब सब
रस्सी के दो टुकड़े
बन गये जिंदगी की-
नई चाहत
हो गये खाक दोनों
आज .... ।

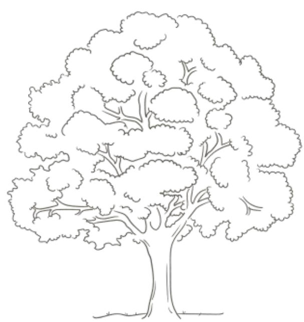

44- सुखी जीवन की सम्भावना

न जाने, कितनी ?
बहन–बेटियों का जीवन
हो गया बर्बाद
बन गया 'जहन्नुम'
जो ब्याही गईं–
देखकर–
कलेक्टरी
मुकद्दमी
दूल्हे के बाप की
एक अच्छे भविष्य
सुखी जीवन की सम्भावना
के लिए ।

वे–
सुनती रही ताने
करती रहीं काम
दिन–रात
खिलाती रहीं
थोप–थोप कर रोटी
पूरे जीवन भर
और पिटती रहीं
अपने शराबी निठल्ले पति से
सुबह शाम ।

45- लाश

जब कोई बेटी-
चली जाती है,
अपने घर से,
बिना बताये
छोड़कर सोते हुए
अपने माँ-बाप को
तो सच में फिर,
माँ-बाप सो ही जाते हैं ।
सो जाती हैं-
खुशियां घर भर की
अंधेरा हो जाता है
नहीं होती रोशनी-
घर में फिर
बन जाती हैं-
कई लाश, चलती-फिरती
जिन्हें-
समाज जीने नहीं देता
और ममता मरने नहीं देती ।

46- पत्थर

जज़्बात नहीं होते-
पत्थरों में ।
सब सोचते हैं ऐसा
क्योंकि वे-
कुछ कहते नहीं
और रोते भी नहीं
होते हैं कठोर
खरोंच पाना भी मुश्किल
पड़े रहते हैं कहीं भी
जहाँ भी रख दो,
पर ऐसा नहीं हैं-
मैंने,
उन्हें रोते देखा है
सुबकते देखा है
कभी जाकर देखो एकान्त में
प्यार से स्पर्श करो भर
आवाज दो, अपनेपन से
बिखर जायेंगे,
हो जायेंगे चूर्ण-चूर्ण
कह देंगे अगाध व्यथा
दफन उनकी कठोरता में..... ।

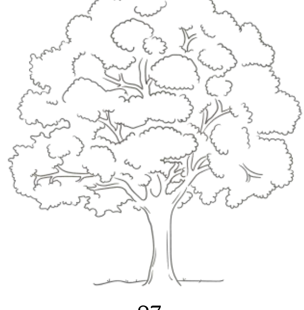

47- साहित्य

समस्त साहित्य को,
भर कर बर्तन में,
मथ डाला है,
मैंने!
अच्छी तरह
फिर छाना
और फेंक दिया सब
व्यर्थ अवशेष
ज्ञान के पुलन्दे
रचे गये जो
कर पलायन,
अपने उत्तरदायित्वों से
करते रहे दिमागी कसरत
गढ़ते रहे कोरी कल्पना
चमत्कारी, अप्रासंगिक
न जब न अब ।
निकली दो बूंद केवल पसीने की
और संघर्ष की
न्याय के लिए
धरा के लिए
कि धरती मुस्करा उठी ।

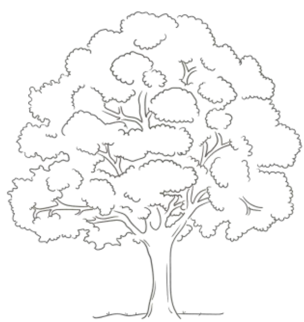

48- तलवार की धार

सदियां खपा दी मैंने
और अब भी.....
पैना कर रहा हूँ-
तलवार को ।
धार को रगड पत्थर से
पसीने से भिगो-
चमका रहा हूँ ।
तेज और तेज इतना कि
पत्थर को काट दे
कि आवाज न हो

न्याय की लड़ाई शेष
होगा फैसला अभी
इस तलवार की धार से ही
बांटा जायेगा
सभी में बराबर-बराबर
सब धन सम्पत्ति जमीन ।
ये तलवार होने नहीं देगी
अन्याय, शोषण
इसकी धार
एक कण को भी बाँटकर,
सौंप देगी नन्हें-नन्हें हाथों में
ताकि फिर कभी अन्याय न हो ।

49- स्वयं को मृत पाओगे

जब पेड़ नहीं होंगे
जंगल नहीं होंगे ।
न बहेगी नदी
जंगलों से मैदानों से
चिड़िया चहकेंगी नहीं
खरगोश फुदकेंगी नहीं
हिरन कूदेंगे नहीं-
खेत खलिहानों में ।
नहीं पसरेगा सन्नाटा
शेर की दहाड़ से फिर ।
सब खेत, कच्ची सड़कों पर
बिछ जायेगा कंक्रीट
मजबूत, चमकदार सुंदर
सूरज की किरणें
फिसलेंगी इस पर और
चुंधिया जायेंगी आँखें ।
हम घिर जायेंगे
कंक्रीट के जंगलों से
छू नहीं पायेगी धूल
कोमल पांव को ।

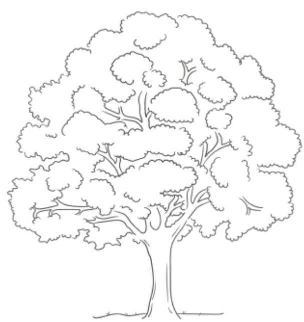

और आसमान में
नहीं उड़ेंगे बाज, चीले, गिद्ध
जब सुबह आंखें खुलेंगी
खोलोगे खिड़की तब
नहीं दिखाई देगी-
नन्हीं चिड़िया आसमान में-
फुर-फुर उड़ती
नहीं घुसेगी चिड़िया घर में,
चीं-चीं गीत सुनाने
खोज न पाओगो
इन कंक्रीट के जंगलों में
इन मशीनों के जाल में
तब तुम स्वयं को
तब स्वयं को
मृत पाओगे ।

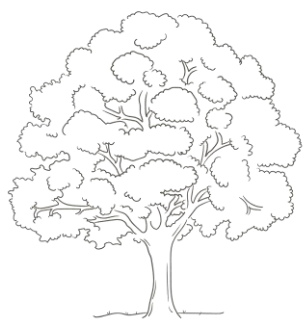

50- मैं जाना चाहता हूँ

मैंने ! पहाड़ नहीं देखे
न छुआ, रुई सी बर्फ को
दबे हैं, पहाड़ जिससे
उगता है सूरज तब
बन जाता है सोना ।
न देखी झील
घिरी पहाड़ियों में जो
सुना है तैरते हैं
सफेद हंस वहाँ

मैंने ! मरूस्थल भी नहीं देखा
वहाँ रेत के टीले चलते-फिरते
आज यहाँ तो कल वहाँ
चरते ऊँट झाडियों को
नहीं देखा अभी सागरों को
हवा के साथ विशाल लहरें
टकराती किनारों से धड़ाम-धड़ाम
पानी में तैरते बड़े जहाज मानों
बह गया एक शहर पानी में ।

मैंने ! नहीं देखा अभी
घने जंगलों को
ऊंचे-ऊंचे पेड़ों को
लटकती बेलों को और
नहीं सुनी अभी
जंगल की खामोशी को
नहीं देखा झरनों को
ऊपर से गिरते पानी को
टकराकर पत्थर से उठे
संगीत को नहीं सुना ।

मैं ! जाना चाहता हूँ
पहाड़, नदी, झरने, सागर
को चाहता था, देखना
पर मुझे जाने न दिया
रोक दिया है
"उन सरहदों ने ।"